चतुर्थ अध्याय

पारिवारिक जीवन मूल्य

(आधुनिक युग के विशेष सन्दर्भ में)

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्यायों के विवेचन से स्पष्ट है कि पारिवारिक जीवन के बदलते हुए विविध पक्षों ने जीवन की दिशा को भी क्रमशः मोड़ा है। हमारी परंपरागत आस्थाएँ तथा मान्यताएँ ध्वस्त हो चुकी हैं। सामाजिक परिवेश तथा उसके प्रति यथार्थ दृष्टि व्यक्ति को संस्कारित करती है और यही संस्कारशीलता क्रमशः सामुदायिक चेतना में बदल जाती है। सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारण एवं मनुष्य की विचार शीलता जीवन मूल्यों को नये रूपाकार देती जाती है। इस विशेषता के कारण आधुनिक युग में ~~xxxxx~~ आकर पूर्ववर्ती काल के जीवन मूल्यों में परिवर्तन हो जाना अवश्यम्भावी है। यह जीवन दृष्टि परिवेश तथा जीवन-मूल्य आदि का सर्वविध परिवर्तन हिन्दी कहानी में बड़े सशक्त रूप में उभर कर आया है। इस परिवर्तन की विस्तृत चर्चा परवर्ती अध्यायों में की जायेगी, किन्तु उसके पहले यहाँ जीवन मूल्यों की सैद्धांतिक वस्तु स्थिति पर विचार कर लेना आवश्यक है।

जीवन-मूल्य :

मूल्य का अर्थ अंग्रेजी ~~x~~ के 'Values' का पर्याय है, जिससे सामान्यतः जो कुछ भी इच्छित है, वही मूल्य माना जाता है।[१] मानविकी के सन्दर्भ में 'मूल्य' का अर्थ जीवन दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई' भी माना जाता है।[२] मूल्य को भली-भाँति समझने के लिए 'तथ्य', 'नार्म', 'अभिवृत्ति' तथा 'मूल्य' का अन्तर स्पष्ट करना यहाँ आवश्यक हो जाता है। 'तथ्य'

यथार्थ का प्रदर्शन अथवा प्रदर्शित होनेवाली एक वास्तविकता है ।[3] यही वास्तविकता जब इच्छा की पूर्ति करने वाली हो जाती है तब मूल्य कहलाती है । इस प्रकार `तथ्य` मात्र वास्तविकता होने के साथ-साथ मूल्य का प्रथम चरण भी है ।[4] `जो है` वह तथ्य(Fact) कहलाता है तथा `जो होना चाहिए` वह मूल्य । इन दोनों स्थितियों के लिए पारिभाषिक शब्द श्रेय -प्रेय अधिक उपयुक्त है । इसलिए अन्य बातों की अपेक्षा मूल्य श्रेय है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक,सांस्कृ -तिक क्षेत्रों में ये परस्पर मिले हुए ही सामने आते हैं ।[5] `आदर्श` भी क्या होना चाहिए कि स्थिति है जबकि `मूल्य` उस अभीप्सित का अनुभव है ।[6] ब्राइटमैन के शब्दों में कहा जा सकता है कि अनुभूत परिस्थिति और तर्कवादी अभिधारणा से उत्पन्न परिस्थिति पर विश्वास करना ही मूल्य है ।[7] मूल्य शब्द अत्यन्त व्यापक है, जिसकी व्यापकता मनोविज्ञान, समाजविज्ञान, अर्थ-शास्त्र एवं साहित्य की परिधि को स्पर्श करती है । मनोवैज्ञानिक `मूल्य` का अर्थ आवश्यकता (इच्छा) की सन्तुष्टि के लिए प्रयुक्त करते हैं ।[8] समाज शास्त्रीय व्याख्या के अनुसार ये आध्यात्मिक जीवन तक ही सीमित न रह कर सत्य, अच्छाई, सौन्दर्य के भी पर्याय हैं ।[9] अत: मूल्य की तर्कमूलक परि-भाषा `नार्म` की व्यवस्था के ~~हने~~ द्वारा ही निश्चित होती है ।[10] मनोविज्ञान में नार्म एक प्रतिमान है जो निर्णय के सन्दर्भ में एक मानक अथवा सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत होता है ।[11] इस प्रकार नार्म, मूल्यों की उत्पत्ति के साधन हैं तथा इन्हें मूल्यों की आन्तरिक स्थिति भी कहा जा सकता है ।[12]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मूल्य जीवन की ऐसी आधार-शिला

है जिस पर सभ्यता तथा संस्कृति रूपी कंकाल सुदृढ़ रहता है । ये समाज,युग तथा परिस्थिति के अनुकूल निर्मित, विकृत तथा अविष्कृत होते रहते हैं । इस प्रक्रिया में चिन्तन से नये विचार जन्म लेते हैं विचारों से धारणाओं का जन्म होता है तथा धारणाओं(Attitude) से मूल्यों (Values) का निर्माण होता है । उक्त व्यवस्था ही इन्हें विकसनशील बनाती है । प्रत्येक समाज में जीवन तथा परस्पर व्यवहार के सम्बंध में कतिपय धारणाएँ होती हैं । यही धारणाएँ स्थिर होकर जीवन मूल्य का रूप धारण कर लेती हैं ।[१३]

व्यक्ति का जीवन उसके अन्त:करण की अभिव्यक्ति होती है । विगत और वर्तमान जीवन के अनुभवों के अनुसार व्यक्ति की जीवन दृष्टि होती है जो उसका जीवन दर्शन कहलाती है और व्यक्ति भावी जीवन की योजना बनाता है । मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के नाते उसका जीवन-दर्शन सामूहिक जीवन दृष्टि से प्राय: प्रभावित एवं निर्मित होता रहता है। यह शाब्दिक आदर्शों का ही बोधक न होकर मूल्यानुभूति, मान्यता तदर्थ संकल्प तथा उन सबके व्यावहारिक पक्षों से सम्बंधित है । सम्भवत: इसीलिए यह माना गया है कि सद्वस्तु(Reality), मूल्यानुभूति(Feeling of Values), आदर्श (Ideal), प्रतिमान(Pattern) संकल्प(Will), तथा धारणा(Attitudes) जीवन मूल्यों के निर्माण में सहायक होते हैं, जिन पर संक्षेप में विचार करना यहाँ आवश्यक है ।

(क) सद्वस्तु :

यह यथार्थ अथवा तथ्य का प्रदर्शन करने वाली वास्तविकता है जिसे आदर्श के रूप में प्रदर्शित करना ही अच्छी मान्यताओं या धारणाओं का - निर्माण करता है । आदर्श बौद्धिक दृष्टि है जो जीवन के सूक्ष्मतम मूल्यों को महत्व देती है तथा भौतिक मूल्यों पर बल न देकर आध्यात्मिक मूल्यों से सम्बंधित मूल्यों की दृष्टि में योगदान देती है । इस प्रकार यथार्थ और आदर्श पर - स्पर सम्पृक्त रहते हैं ।[१४]

(ख)मूल्यानुभूति :

यह प्रक्रिया मानव के अन्तर में प्रविष्ट होकर जीवन के तत्व ग्रहण करती हुई गंभीर संवेदनाओं की अनुभूति के रूप में परिणत होती है । यह मूल्य का केवल सैद्धांतिक पक्ष है,[१५] जो मानव की अतृप्तियों, आकांक्षाओं तथा तज्जन्य की सृष्टि करती है । इससे प्रतिमान की सृष्टि होती है और प्रतिमान बनने पर वह मूल्य का रूप हो जाता है ।

(ग) प्रतिमान :

मनोविज्ञान में इसे एक ऐसा मानक या सिद्धान्त माना जाता है जो अंतिम निर्णय देता है । किसी व्यक्ति के चरित्र, अच्छाई, व्यवहार अथवा आचरण, सामाजिक-पारिवारिक कार्य सम्बंधों, सिद्धान्तों आदि से प्रतिमान का निर्माण होता है ।[१६]

(घ) संकल्प :

यह किसी विशेष व्यक्ति से उपार्जित की गयी प्रवृत्ति है जो किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रतिकूल प्रतिक्रिया उद्भूत करती है और ये ही प्रतिक्रियाएँ किसी व्यक्ति के प्रति परिस्थितिवश 'अस्तित्वमूल्य' और 'नास्ति मूल्य' में बदल जाती हैं जिनमें स्थायित्व का भाव अधिक विद्यमान रहता है । 'मूल्य' स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से व्यक्तिगत परिधियों में या सामुदायिक विशेषता के नाते एक ऐसी वांछित संकल्पना है, जो उपलब्ध लक्ष्यों, साधनों एवं साध्यों के चुनाव को प्रभावित करती है।[१७] संकल्पनात्मक अनुभूति से तात्पर्य आत्मा की मनन शक्ति की उस असाधारण अवस्था से है जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है ।[१८]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मानव के आन्तरिक पक्ष के प्रयास तथा संकल्प ही मूल्य का स्वरूप निर्धारित करते हैं । व्यक्ति की अभिलाषाएँ लक्ष्य, आदर्श, संकल्प, प्रतिमान बनने की प्रक्रिया की चरम सीमा ही मूल्य का रूप होती है । इसी आधार पर हम औचित्य तथा अनौचित्य का निर्णय - करते हैं तथा सामाजिक जीवन व्यवस्थित होता है । अत: मूल्य ऐसे लक्ष्य कहे जा सकते हैं जो समाज द्वारा मान्यता प्राप्त करके अलक्षित रूप में हमारे आचरण का संचालन करते हैं ।[१९] इससे स्पष्ट है कि जीवन मूल्य वह वैचारिक इकाई, सिद्धान्त या अवधारणा है जिसके लिए हम अपने जीवन का कोई भाग आस्थाओं की कीमत के रूप में चुकाते हैं । जीवन के समस्त व्यवहार युग व परिस्थितियों की देन होते हैं अत: जीवन मूल्य देश और युग के अनुरूप निर्मित,

विकसित या परिवर्तित होते रहते हैं ।

मूल्यों को प्रभावित करने वाले पक्ष :

पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि सद्वस्तु-मूल्यानुभूति, आदर्श, प्रतिमान, संकल्प, धारणाओं, मान्यताओं तथा आस्थाओं आदि से मूल्यों का निर्माण होता है । ये सभी एक प्रकार से मूल्यों को प्रभावित करते हैं, जबकि व्यावहारिक जगत में मूल्यों को अन्य परिस्थितियाँ भी प्रभावित करती हैं । मूल्यों को प्रभावित करने वाली शिक्षा का प्रसार, अर्थ- व्यवस्था पाश्चात्य संस्कृति के प्रति मोह आदि परिस्थितियों का निर्माण तो सन् १९६० से पहले ही होने लगा था परन्तु उसका पूर्ण प्रभाव इसी काल में दिखायी पड़ा जिससे जीवन मूल्य नयी अभिवृत्तियों, नये संकल्प, नये दृष्टिकोण अपनाते हुए परिवर्तित व प्रभावित होने लगे । प्रभावित करनेवाली इन परिस्थितियों पर यहाँ क्रमश: विचार किया जा रहा है ।

१- शिक्षा का प्रसार :

शिक्षित वर्ग परंपरागत धारणाओं को प्राय: स्वीकार नहीं करता वरन् अन्ध विश्वास व रूढ़ियों को अस्वीकार कर उन्हें प्रदर्शन मात्र मानता है । वह प्रत्येक धारणा को किसी सीमा तक तर्क के रूप में स्वीकार करता है । साठोत्तर काल में शिक्षा का प्रसार व्यापक रूप में हुआ तथा प्रत्येक छोटे से छोटे गाँव में स्कूल तथा शहरों में महाविद्यालय खुलने का आग्रह रहा । यह पूर्ववर्ती अध्याय में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि आधुनिक युग में सहशिक्षा तथा नये

नये दृष्टिकोण के विकसित होने के कारण दूरी प्राय: कम हुई और पाश्चात्य शिक्षा व जीवन पद्धति के प्रभाव ने मानसिक सम्बंध व बौद्धिकता में परिवर्तन किया । फलस्वरूप नयी चेतना व स्त्री-पुरुष में समानता तथा अपने अधिकारों के प्रति सजगता उत्पन्न होने लगी । शिक्षा प्राप्त नारी आत्मनिर्भर बनकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति जागृत होने लगी । उसमें प्रेम- विवाह तथा जीवन के प्रति नयी चेतना दृष्टिगोचर होने लगी जिससे दाम्पत्य जैसे मधुर सम्बंध भी अनचाहे व अजनबी से लगने लगे । तलाक व तनाव की स्थिति सहज रूप धारण करने लगी । परंपरागत रीति-रिवाज, जाति- कर्म का मोह छूटने लगा । परिवर्तित दृष्टिकोण से मूल्यों में परिवर्तन आना आवश्यक हो गया ।

२-पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव :

आज भारतीय जीवन पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप जीवन- मूल्य पूर्ण रूप से विघटित होकर टूट रहे हैं तथा नये मूल्य विकसित हो रहे हैं । पाश्चात्य विचारधारा एवं सभ्यता के प्रभाव ने व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित बना दिया जिससे सामाजिक दायित्व की भावना प्रभावित होकर अत्यन्त संकुचित होती जा रही है । व्यक्ति वैज्ञानिक तकनीकी शिक्षा व उद्योग शिक्षा की ओर आकर्षित होकर उसे अपनाने लगा है । साथ ही पाश्चात्य देशों की भौतिक सम्पन्नता के प्रति आकर्षण व रीति-नीतियों के प्रभाव से उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहा है । नर-नारी के उन्मुक्त सम्बंध, पारिवारिक सम्बंध एक सीमा तक

परिवर्तित होने तथा पारिवारिक सदस्यों के मध्य वैयक्तिकता का जन्म होने लगा है । फलत: अनेक परंपरागत सामाजिक मर्यादाओं का टूटना प्रारंभ हो गया है । कहीं-कहीं अर्थ के अभाव में अथवा अर्थ की प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील व्यक्ति दूसरे प्रयत्नों से भी उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है जिससे भ्रष्टाचार, अनैतिकता व रिश्वत जैसी प्रवृत्तियों को किसी सीमा तक बढ़ावा मिलता है । पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से एक ओर व्यक्ति स्वतंत्र मैत्री सम्बंध अपनाता है तो दूसरी ओर उसकी विवाह सम्बंधी अनेक धारणाओं में परिवर्तन आया है । परंपरागत मूल्यों में विवाह एक ही पुरुष-स्त्री के सम्बंध को सदा निभाते रहने का स्थायी आश्वासन था, परन्तु आज यदि स्त्री- पुरुष निजी अहं के कारण एक दूसरे में समायोजन स्थापित नहीं कर पाते तब विवाह का मूल्य विघटित होकर तलाक जैसे दूसरे मूल्यों में परिवर्तित हो रहा है । इसके लिए पाश्चात्य जीवन पद्धति एक सीमा तक उत्तरदायी है ।

पाश्चात्य प्रभाव ने शिक्षित तथा अभिजात्य वर्ग में मनोरंजन के साधनों तथा क्लबों के प्रति आकर्षण में भी पर्याप्त वृद्धि हुई की । इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सामाजिक जीवन भी अलग- अलग वर्गों के खेमों में बंट गया । फलत: व्यक्ति व्यापक सामाजिक चेतना से क्रमश: कटता जा रहा है । वह निजी समुदाय के प्रति अहं की चेतना से ग्रस्त है । पाश्चात्य संपर्क का दूसरा परिणाम भौतिकवादी दृष्टि भी है, इससे व्यक्ति अधिकाधिक संपन्न और समृद्ध बनने के लिए सचेष्ट रहता है । यह सचेष्टता व्यक्ति की

अर्थार्जन-चेतना को विकृत करती है जिस पर आगे विस्तार से विचार किया जा रहा है। पाश्चात्य प्रभाव से सम्बंधित तीसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि हमारे सामाजिक व्यवहारों, शिष्टाचार, अभिवादनों तथा व्यक्तिगत व पारिवारिक रीति-नीतियों में पश्चिम का अनुकरण पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। व्यक्ति प्राय: आधुनिकता के उत्साह में और आधुनिक कहे जाने की होड़ में अनेक व्यवहारों को इस प्रकार अपनाता है जिन्हें वह स्वाभाविक रूप से आत्मसात भी नहीं कर पाया है। अनेक बार ऐसे व्यवहार ऊपर से ओढ़े हुए से प्रतीत होते हैं इन सबका मनोवैज्ञानिक परिणाम यह दिखायी पड़ता है कि वह परंपरा से आयी हुई प्रत्येक बात को हेय और त्याज्य समझने लगा है। यह मन:स्थिति ही परंपरागत सामाजिक और पारिवारिक जीवन मूल्यों को तोडने के लिए बहुत अधिक उत्तरदायी है। चूंकि दृष्टिकोण मूल्यों में परिवर्तन और नये मूल्यों का विकास करता है अत: पाश्चात्य प्रभाव आधुनिक मूल्यों के विकास में एक सशक्त आयाम सिद्ध होता है।

३- आर्थिक व्यवस्था :

आज की आर्थिक व्यवस्था पर औद्योगीकरण तथा तज्जन्य नगरीकरण का विशेष प्रभाव पड़ा है। पूर्ववर्ती अध्याय के विवेचन में स्पष्ट किया गया है कि औद्योगीकरण का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप में मूल्यों पर बहुत अधिक पड़ा है। नये उद्योगों की स्थापना से एक ओर जातिगत भेदभाव समाप्त होने लगा तो दूसरी ओर आर्थिक व्यवस्था से निर्मित वर्ग-वैषम्य उग्र रूप धारण करने लगा।

साथ ही, शहरों की बढ़ती जनसंख्या , बेकारी, मँहगाई से अवासीय समस्या भी उग्र रूप में सामने आने लगी तथा परंपरागत पारिवारिक मर्यादाओं में आबद्ध मानव एक ओर वृद्ध, युवक, बच्चों के साथ एक ही कमरे में जीवन-यापन करने के लिए विवश हो गया तो दूसरी ओर गाँवों से दूर शहरों में नौकरी के कारण संयुक्त परिवार से व्यक्ति अलग हो गये । इस परिस्थिति के फलस्वरूप संयुक्त परिवार की भावात्मक एकता का मूल्य विघटित हो चला । आज शिक्षा अर्थ से इतनी जुड़ती जा रही है कि उसके प्रति समाज का दृष्टिकोण ही बदल चुका है जिसके कारण वह सामाजिक संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग बनने से वंचित हो गयी तथा व्यवसायलक्षी शिक्षा को प्राथमिकता प्राप्त होने लगी । दूसरी ओर उसकी व्यवस्था इतनी अपर्याप्त है कि वह सभी को सहज सुलभ नहीं है । तीसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उद्योग-व्यवसायों में एक ओर नेता व मजदूर वर्ग अपने- अपने स्वार्थ के प्रति लालायित है तथा हड़तालों से अपने स्वार्थ सिद्ध कराने में किसी सीमा तक सहायक होता है, दूसरी ओर समाज सेवा का मूल्य लुप्त होता जा रहा है । सामाजिक परिस्थितियाँ, आर्थिक समस्याओं, तथा धन सम्पन्न बनने की आपा-धापी में स्वार्थ चेतना उग्र रूप धारण करती जा रही है । कहीं-कहीं योग्य व्यक्ति को अच्छी नौकरी नहीं मिल पाती । ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी व्यक्ति रूढ़ियों को तोड़ने की प्रबल आकांक्षा करता है और विरोध करता है । यदि असफल होता है तब एकाकीपन, अजनबीपन, घुटन, निरुद्देश्यता , आक्रोश जैसी मानसिक स्थितियां उत्पन्न होती है ।[२०] अतः पराजय से आतंकित या टूटते हुए व्यक्ति और उनके बिखरते हुए समाज परम्परा से चले आ रहे खोखले मूल्यों के साथ संघर्ष कर रहा है ।[२१] आज आर्थिक परिस्थितियाँ इतनी परिवर्तित हो गयी हैं कि शिक्षित बेरोजगार युवावर्ग

अनेक हीन भावनाओं व कुंठाओं का शिकार हो रहा है । गरीब अधिक गरीब होता जा रहा है तथा अमीर पूंजीपतियों में परिवर्तित होता जा रहा है । मध्यम वर्ग बीच में पिस रहा है क्योंकि संघर्ष की अपेक्षाकृत वह कभी अभावग्रस्त तो कभी कुंठाग्रस्त हो रहा है । अतः आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक मूल्य शिथिल होकर टूट रहे हैं तथा समानता, स्वतंत्रता, समाज कल्याण के नारे मूल्यों का रूप लेते जा रहे हैं । आर्थिक व्यवस्था भी वैयक्तिक चेतना के विकास में सहायक हुई है । प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसका धन उसके ही परिवार, बच्चों पर व्यय हो, संयुक्त परिवार के समस्त सदस्यों की सम्मिलित आवश्यकता को वह उपेक्षित करने लगा है । इस प्रकार परिवार में सद्भाव व सहायता का मूल्य समापन की स्थिति में पहुँच गया है । स्त्री-पुरुषों के सम्बंधों में भी अब परिवर्तन देखा जा सकता है । समान अधिकार की मान्यता तथा तज्जन्य आकांक्षा प्रधान हो चुकी है । आर्थिक स्वतंत्रता के कारण नारी में अपने अस्तित्व के प्रति जागरण तथा अहं की चेतना जागृत हुई जिससे रहन-सहन, रीति-रिवाजों व परंपरागत जीवन में पूर्णतया परिवर्तन आने लगा । इन सभी परिस्थितियों एवं नवविकसित प्रवृत्तियों के कारण जीवन मूल्यों में संक्रमण तथा नये मूल्यों का विकास अवश्यम्भावी हो गया है । साठोत्तरी कहानी में जीवन का यह पक्ष बहुत अधिक उभर कर आया है जो कि परवर्ती अध्याय का विषय है ।

४- जीवन मूल्यों के विविध पक्ष या रूप :

~~पिछले~~ पिछले पृष्ठों में यह विचार किया जा चुका है कि मूल्य को हम वस्तु का मूल्यांकन करके ही मूल्यवान बनाते हैं । करने वाला कर्ता, विषय, वस्तु, इच्छा, आवश्यकता तथा अभिरुचि के द्वारा ही वस्तु का मूल्य निर्धारित

करता है । इस प्रकार मूल्य किसी सम्बंध विशेष के न होकर विषय- वस्तु और उसके प्रति दृष्टिकोण में निहित रहते हैं । भिन्नता वस्तु में न होकर उसे परखने वाले व्यक्ति की दृष्टि में होती है, इसका कारण यह है कि भिन्न-भिन्न व्यक्ति विविध सामाजिक परिस्थितियों, वातावरणों, संस्कारों तथा जातिगत प्रभावों में पलते हैं । अत: बहिर्तत्व उसके मूल्यांकन में विभिन्न भावों का मिथ्याभाव प्रदर्शित करते हैं ।[२२] उदाहरण स्वरूप आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सजी सुन्दर युवती को देखकर स्वर्णकार उसके आभूषणों को मूल्यवान मानता है, कवि उसके सौन्दर्य व अलंकरण पर मुग्ध होता है, शिशु के लिए उसका मातृत्व मूल्यवान है, कामुक व्यक्ति उसके अंग माधुर्य को तथा दार्शनिक व्यक्ति उसके जीवन के सत्य और शिवत्व को अधिक मूल्यवान समझता है । इस प्रकार एक ही वस्तु में विभिन्न मूल्यों का रूप मूल्यांकन करने वाले की दृष्टि से भिन्न हो जाता है ।

अत: स्पष्ट है कि जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं पदार्थों से सम्बंधित मूल्य भी भिन्न होते हैं । परिवेश द्वारा उनका विकास होता है । दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी परंपरागत विशेषताएँ होती हैं अत: एक ही परिस्थिति का भिन्न सामाजिक परंपरा पर आघात, प्रभाव या मूल्य दृष्टि का विकास अलग प्रकार से होता है । इससे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि परिस्थितियाँ एवं सामाजिक परंपरा की भिन्नता की अन्त:क्रिया जीवन मूल्यों के अनेकविध रूपों का विकास करती है । अत: इस विशेषता के कारण जीवन मूल्य संस्कृति का एक सशक्त माध्यम होते हैं । सांस्कृतिक परिस्थितियों में परिवर्तन प्रदान करने का

श्रेय धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथ्यों से सम्बंधित जीवन मूल्यों को दिया जा सकता है । उपर्युक्त अन्त: क्रिया के परिणाम स्वरूप ही परंपरागत मूल्य शिथिल होकर टूटते जाते तथा नये रूप में विकसित होते जाते हैं, साथ ही कुछ मूल्य शाश्वत भी होते हैं, जिन्हें प्रत्येक समाज स्वीकार करता है ।[२३] इस प्रकार मूल्य व्यक्ति और समाज पर आधारित कहे जा सकते हैं । व्यक्तिगत मूल्यों को भावात्मक, आत्मिक-बोध तथा जीवन द्वन्द्वों का परिणाम कहा जा सकता है तथा सामाजिक रूप में मूल्यों के सन्दर्भ में आर्थिक धारणाएँ भी सम्मिलित की जा सकती है ।[२४] इस प्रकार मूल्य एक प्रकार से वे मानक या मानदंड कहे जा सकते हैं जो मानव की चरित्र सम्बंधी अच्छाई , बुराई को माप कर मनोवैज्ञानिक कसौटी पर भी कस कर देखते हैं । इन मानदंडों के द्वारा सांस्कृतिक, सामाजिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, तार्किक आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन होता है । इस प्रकार मूल्य अनेक विध होते हैं जिन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है ।

१- व्यक्तिगत मूल्य(Individual Values)
२- आध्यात्मिक मूल्य(Spiritual Values)
३- नैतिक मूल्य (Moral Values)
४- समाजगत मूल्य (Social Values)

व्यक्तिगत मूल्य :

प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार वैयक्तिक अनुभवों और समाज से प्राप्त संस्कारों, पर निर्भर करता है ।[२५] अत: जो मूल्य व्यक्ति के विकास व उसकी उन्नति में सहायक होते हैं, वे व्यक्तिगत मूल्य कहे जा सकते हैं । संस्कृति में व्यक्तिगत, संस्कारों की प्रधानता रहती है, अत: व्यक्ति-स्वातन्त्र, प्रेम,सद्भाव,

ईमानदारी, आत्मानुभूति आदि संवेदनाएँ इन्हीं मूल्यों के अन्तर्गत आती हैं। वैयक्तिक मूल्यों में व्यक्ति-स्वातंत्र्य ही प्रधान रहता है । यहाँ स्वातन्त्र्य का अर्थ है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व में अन्तर्निहित मानवीयता को (मानव मूल्यों के अर्थ में) समस्त संस्कारों से युक्त होकर अर्थवान करता है, क्योंकि उसका व्यक्ति समस्त सामाजिक व्यतित्वों की समष्टि में ही गतिशील है, इस कारण इसमें स्वातंत्र्य का भाव समन्वित है ।[२६] व्यक्ति विशेष की संवेदनाओं और अभिवृत्तियों का उस सीमा तक योगदान वैयक्तिक मूल्य के अन्तर्गत माना जायेगा जहाँ तक वे सामाजिक या राष्ट्रीय मूल्यों के विरोधी न बन कर पूरक रहते हैं । मानव के व्यक्तित्व के विकास के लिए वैयक्तिक मूल्य परमावश्यक है । इसमें प्रेम, सौन्दर्य, साहचर्य, सत्य, व्यक्ति-स्वातंत्र्य, स्वाभिमान, इन्द्रिय निग्रह तथा काम सम्बंधी अभिवृत्तियों को समाहित किया जा सकता है ।[२७] आज के युग में व्यक्ति त चेतना अत्यधिक प्रबल होती जा रही है । फलस्वरूप दाम्पत्य जीवन व जीवनादर्श के संयम को नकारा जा रहा है तथा जीवन अनेक विसंगतियों के साथ परिलक्षित होता है । ठोस यथार्थवादी दृष्टि तथा आत्मकेन्द्रित चेतना के प्रेम, सौन्दर्य और साहचर्य की अभिवृत्तियां भौतिक आकांक्षा तृप्ति से प्रभावित दिखायी पड़ती हैं जो स्वार्थ या उपयोगिता से प्रेरित कही जा सकती हैं । इनकी आधार-भूमियों को पूर्ववर्ती विवेचन के अन्तर्गत निर्दिष्ट किया जा चुका है ।

आध्यात्मिक मूल्य :

इनका तात्पर्य उन अभिवृत्तियों से है जो मन आत्मा तथा परमात्मा से

सम्बंधित रहती है । धर्म, मोक्ष सम्बंधी मूल्य इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं ।[२८] भारतीय संस्कृति में इनका महत्व उच्च कोटि का है । भारतीयों ने भौतिक क्षेत्रों में यथेष्ट उन्नति करके जीवनगत चरम साध्य आध्यात्मिकता को स्वीकार किया है ।[२९] किन्तु जहाँ तक आध्यात्मिकता का प्रश्न है यह व्यक्ति की निजी चेतना या प्रेरणा से सम्बद्ध होती है । इसी दृष्टिकोण से जीवन की सोद्देश्यता का निर्माण होता है जो पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त करके शाश्वत जीवन- मूल्यों का निर्माण कर सकता है । व्यक्ति की चेतना से सम्बद्ध होने के कारण इसे व्यक्तिगत जीवन मूल्यों के अन्तर्गत लिया जा सकता है, किन्तु दूसरी ओर ऐसे जीवन मूल्य सामाजिक व्यक्तिगत और साथ ही नैतिक मूल्यों को प्रभावित कर सकते हैं । तीसरे वे व्यक्ति की जीवन-चेतना को भौतिक जीवन तक सीमित न करके उसे पूर्व जन्म और पुनर्जन्म से भी जोड़ते हैं । इस दृष्टिकोण से विकसित आस्थाओं, मान्यताओं तथा धार्मिक विश्वासों का भी व्यक्ति के निर्माण या उसकी जीवन-दिशा निर्धारित करने में न्यूनाधिक रूप से योगदान होता है । जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय के विवेचन से प्रकट है कि आज के जीवन में आध्यात्मिक मूल्यों की स्थिति शिथिल सी है । आधुनिकता के दृष्टिकोण ने धार्मिक आस्थाओं तथा विश्वासों को पर्याप्त मात्रा में अनावश्यक सा करार दे दिया है । आज बौद्धिकता तथा योरोपीय सभ्यता का प्रभाव भी इसके लिए बहुत कुछ उत्तरदायी है, जिन पर हम यथाप्रसंग विचार कर चुके हैं । व्यक्तिगत मूल्य तथा आध्यात्मिक मूल्यों का विकास समाज में ही होता है अत: समाजिक मूल्यों पर विचार करना आवश्यक है ।

समाजगत मूल्य :

समाजगत मूल्य मानव, समाज व राष्ट्र की व्यापक सीमा को गतिशील करते हुए उनके आदर्शों से सम्बंधित होते हैं तथा समाज में मर्यादा व आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित रहते हैं।[30] व्यक्ति समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करता है अत: सामाजिक मूल्य किसी एक व्यक्ति के न होकर समाज के सभी व्यक्तियों के सम्मिलित रूप में होते हैं। इनके अन्तर्गत मानव- जीवन के समस्त व्यवहार आ जाते हैं। यथा- आज्ञापालन, मर्यादा, सहयोग, लोक संग्रह, रीति-नीति, परस्पर सम्मान, मैत्री, विवाह, दाम्पत्य जीवन आदि से सम्बद्ध मूल्य शाश्वत मूल्य माने जाते हैं। जो परंपराओं द्वारा निर्मित होकर समाज के मानदंड के रूप में प्रतिष्ठित रहते हैं। समाज अपनी व्यवस्था को सुचारु रूप से रखने के लिए नैतिक मूल्य, मान्यताएँ तथा आदर्श स्थापित करता हैं। युगीन परि-स्थितियाँ उनके परिवर्तन व विकास में सहायक होती हैं।

आज वैज्ञानिक दृष्टि तथा बुद्धिवाद की अधिकता से दृष्टिकोण में वस्तुपरकता(Objectivity), यथार्थता(Impiricism) तथा नीति -निरपेक्षता(Ethical Nutrality) का आधिक्य होता जा रहा है। चिन्तन समाज के निकट आकर व्यावहारिक बनता जा रहा है तथा समाज के मूल्य असंपृक्त होकर नये परिवेश में आबद्ध होते जा रहे हैं। इस प्रकार समाज के मूल्य, वैज्ञानिक जीवन दृष्टि, यथार्थपरकता तथा बौद्धिकता आदि कारण मानव के व्यवहार में संचालित होने के साथ परस्पर सामंजस्य भी स्थापित करते हैं। इनके परस्पर आकर्षण से तनाव तथा द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। समाज के मूल्य 'अपेक्षित' तथा वांछनीय

स्थिति का निर्धारण करते हैं। व्यक्ति के निजी मूल्य कभी समाज के मूल्यों से मेल खाते हैं तो कभी एक द्वन्द्वात्मक स्थिति के द्योतक भी बन जाते हैं। इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि विज्ञान समाज व वैयक्तिक मनोभावनाओं से बिना प्रभावित हुए विषय को यथेष्ट रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है जिसमें मूल्य निरपेक्षता मुखर रहती है।[३१]

आज के सामाजिक मूल्यों के विषय में यदि कहा जाये तो उनमें सामाजिक परिवर्तन तथा पाश्चात्य शिक्षा व संस्कृति का प्रभाव, औद्योगीकरण, नगरीकरण का प्रभाव ही विषमताओं या परिवर्तन का कारण बनता है। मनुष्य को सामाजिक प्राणी माना जाता है। वह कहीं न कहीं उसकी व्यवस्था के प्रति स्वयं को प्रतिबद्ध मानता है अथवा इससे भिन्न स्थिति में उसके लिए विवश हो जाता है। नैतिकता की मान्यता तथा तज्जन्य मूल्य प्राय: सामाजिक व्यवस्था से ही विकसित होते हैं जिन पर विवेचनगत सुविधा के विचार से अलग से विचार किया जा रहा है।

नैतिक मूल्य :

नैतिक शब्द आचरण का द्योतन करता है। समाज के अनुकूल मनोवृत्तियों से सम्बंधित नीतियों का आचरण करना ही नैतिक मूल्य है। समाज व परिवार की दृष्टि से नैतिक मूल्य विशेष महत्व रखते हैं, क्योंकि नैतिक मूल्यों का विघटन ही समाज या परिवार के विघटन का कारण बन जाता है। सामाजिक

मूल्य व नैतिक मूल्य एक दूसरे के पूरक माने जाते हैं। नैतिक मूल्यों का सम्बंध व्यक्ति और समाज दोनों से है। व्यक्ति परिवार व समाज निजी दृष्टिकोण व परिस्थितियों के अनुसार अपने मानदंड स्थापित कर लेते हैं। नैतिक नियमों, मान्यताओं अथवा मूल्यों का सीधा सम्बंध सामाजिक व्यवस्था की सम्यक् प्रतिष्ठा, सामूहिक सहयोग तथा समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में व्यक्ति में समाज सापेक्ष आचरण से है। इसी के आधार पर सामाजिक नियम तथा राजकीय अधिनियम आदि निर्धारित होते हैं। सामूहिक हित का संपादन करने वाले आचरण नैतिक और उसके विरोधी व्यवहार प्राय: अनैतिक होते हैं। अत: इससे स्पष्ट है कि नैतिक जीवन- मूल्य प्रभावी समाज-व्यवस्था के निर्माण में सहायक होते हैं। सामूहिक जीवन के परिवर्तन के साथ-साथ इसके बाह्य रूप में परिवर्तन स्वाभाविक है किन्तु सोद्देश्यता की अनिवार्यता प्राय: प्रत्येक युग और जीवन सन्दर्भ से जुड़ी हुई है।

प्रत्येक संस्कृति के अपने निजी मूल्य होते हैं जिनसे सामाजिक व्यवहार निर्धारित होते हैं तथा नये मूल्यों के विकास को उचित अवसर प्राप्त होता है। व्यक्ति के सामाजिक होने का अर्थ ही मूल्यों का आन्तरीकरण माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में संस्कृति के मूल्य ही व्यक्ति के जीवन के अंग बन जाते हैं। समाज की एकता तथा समाज के साथ व्यक्ति का तादात्म्य इसी कारण से सम्भव हो पाता है। दूसरी ओर व्यक्ति की अपनी अवधारणाएँ तथा मान्यताएँ जाने- अनजाने विकसित होती रहती हैं तथा समाज के सदस्यों द्वारा अंगीकृत होकर संस्कृति का अंग बनती जाती हैं। आगे चलकर यही मूल्यों के संक्रमण, परिवर्तन तथा उनकी स्वीकृति का कारण बनती है।

जीवन मूल्यों में संक्रमण :

यह लक्ष्य किया गया है कि बदलते परिवेश में जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण से विकसित मूल्यों की स्वीकृति तथा परंपरागत मूल्यों की तर्कपूर्ण अस्वीकृति अथवा दूसरे शब्दों में परिवर्तन तथा मानवीय सम्बंधों की बौद्धिक स्वीकृति ही मूल्यों का संक्रमण कहलाता है । यह परिवर्तन सन् १९६० के पश्चात् स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होता है । इसमें सन्देह नहीं कि इसकी नींव सन् १९५० से प्रारंभ होने लगी थी क्योंकि १९५० से १९६० के मध्य व्यक्ति में आधुनिकता बोध के प्रति विशेष लगाव था, परंतु विसंगति, जटिलता व विद्रूपताओं का अंकन इतना नहीं था जितना सन् १९६० के बाद मिलता है । सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं के दृष्टिकोण से परंपरागत मूल्यों के ह्रास की जो प्रक्रिया इस समय चल पड़ी वह सन् १९६० के बाद अत्यधिक तीव्र हो गयी । इसके साथ ही इन बीस वर्षों की अवधि में राजनीतिक गति-विधियों में पहले की अपेक्षाकृत अनेक परिवर्तन तथा नये आयामों के नये-मोड़ निरन्तर एक के बाद एक आते गये । इन सबके सामूहिक प्रभाव ने परंपरागत सामाजिक मूल्यों को झकझोर दिया, साथ ही नये मूल्यों के संक्रमण की एक सशक्त भूमिका भी तैयार की ।

मूल्य संक्रमण के सम्बंध में आस्था तथा प्रबुद्धता की परस्पर सम्बद्धता माना जा सकता है। जब तक व्यक्ति बुद्धितत्व व उपेक्षा का विशेष महत्व रहता है, जिसका आधार बुद्धितत्व के परिवेश में आबद्ध तथा उसके प्रति जागरूक रहता है तब तक प्रबुद्धता उसका पथ प्रदर्शित करती रहती है तथा अन्ध-विश्वासों तथा तर्कहीन परम्परानुगामिता का विरोध करती है । व्यक्ति तर्क द्वारा तथ्य के सिद्ध हो जाने पर ही मूल्य को स्वीकार

करता है तथा समस्त परंपरागत मान्यताओं, प्राचीन पीढ़ी के आदर्शों तथा आदेशों के तर्कसंगत आधारों का अन्वेषण करता है । असफलता में उसे स्वीकार नहीं करता । इस प्रकार वह निश्चित सुगठित, सुप्रमाणिक ज्ञान को ही मान्यता प्रदान करता है । जब यह प्रबुद्धता निजी मान्यता को अत्यधिक महत्व देकर समस्त संसार को उस पर आधारित करने का प्रयत्न करती है तब उसमें मिथ्यातत्व का आगमन हो सकता है । मिथ्यातत्व से संपृक्त तथा कथित प्रबुद्धता व्यक्ति को अनास्था की ओर भी ले जाती है और सामूहिक मान्यताओं से उसकी संगति न बैठने की स्थिति में द्वन्द्व की स्थिति आ जाती है । यह द्वन्द्व की स्थिति परंपरागत जीवन मूल्यों में विक्षेप उत्पन्न करती है और यह विक्षेप मूल्यों के संक्रमण को जन्म देता है ।

यह उल्लेखनीय है कि युग की संक्रान्ति से परम्परागत जीवन मूल्यों में क्रमश: नये प्रतिमानों का संघर्ष, उनका विघटन तथा कालान्तर में नये मूल्यों का विकास होता है । फलत: एक युग के जीवन मूल्य परिस्थितियों के परिवर्तन की स्थिति वाले दूसरे युग में महत्वहीन लगते हैं । व्यक्ति प्राय: विचारों में परंपरागत रीति- रिवाजों को रूढ़िग्रस्त मानकर एक ओर उन्हें हीन दृष्टि से देखते हैं , किन्तु दूसरी ओर उनकी अनेक बातों को जाने-अनजाने अपनाये भी रहते हैं । इस प्रकार वे परंपरा-प्रवाह से पूर्णतया असम्बद्ध नहीं कहे जा सकते । ग्रामीण जीवन के मध्य परंपरागत मूल्यों तथा मान्यताओं की प्रतिष्ठा किसी न किसी रूप में विद्यमान है, जबकि नगरों में उनका शनै: शनै: ह्रास हो रहा है । प्रभावित व्यक्तियों को अनुभूति होती है कि आदर्शवादी संरचना द्वारा स्थापित तथा नियंत्रित सम्बंध एक ओर शिथिल तथा प्रभावहीन

नये सम्बन्धों का सूत्रपात होता जा रहा है। इन
बनते जा रहे हैं तो दूसरी ओर नये सम्बंधों की स्थापना में स्थिर मूल्यों के प्रति अनास्था, स्थितियों का विखंडन तथा विखंडित स्थितियों को जोड़ कर नयी व्यवस्था का सूत्रपात होता है।[32] प्रत्येक प्राचीन मूल्य की यह नियति होती है और वही मूल्य टिक पाता है जो युगानुरूपता के गुण के कारण विखंडन से सुरक्षित रह सके। उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में आलोच्य युग के जीवन मूल्यों को हम इन तीन रूपों में विद्यमान देखते हैं।

१- भारतीय परंपरा से प्रभावित, प्राचीन जीवन मूल्य।
२- नये परिवेश से अनुप्राणित, नवीन जीवन मूल्य।
३- प्राचीन व नवीन के मध्य द्वन्द्व की स्थिति से संयुक्त जीवन मूल्य।

आज के समाज में भी अनेक वृद्धजन प्राचीन मान्यताओं के इतने कट्टर समर्थक मिल जाते हैं कि वे नये दृष्टिकोण को अपनाने या स्वीकारने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। फलतः वे पुराने रीति-रिवाज मान्यताओं का समर्थन ही नहीं करते अपितु उनके पालन के आग्रही होते हैं। परिवार व ~~जीवन-मूल्य~~ समाज के कुछ व्यक्तियों में इसी प्रकार के जीवन मूल्य विद्यमान हैं। दूसरी ओर नयी पीढ़ी के व्यक्ति हैं जो नये दृष्टिकोण को अपनाकर परंपरागत मूल्यों की पूरी तरह उपेक्षा करते हैं तो कभी उन्हें निरर्थक मान कर अस्वीकार करते हैं। ऐसे लोग प्रायः नयी जीवन दृष्टि व मूल्यों का समर्थन करते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति अधिकांशतः आज के उच्च वर्ग में दृष्टिगोचर होते हैं। तीसरी ओर वे व्यक्ति हैं जो न तो पूर्ण रूप से परंपरागत मान्यताओं

तथा रीति - नीतियों को अस्वीकार करते हैं न ही पूर्ण रूप से आधुनिकता को ही स्वीकारते हैं । अत: उनके आचरण व व्यवहार न पुरानी दृष्टि से आबद्ध रहते हैं न ही आधुनिक । कहीं- कहीं वे मानसिकता से नये मूल्यों को स्वीकारते हैं परन्तु व्यावहारिक जगत में पुराने रीति- रिवाज आबद्ध रखने को विवश से दिखायी पड़ते हैं । यथा- कुछ परिवारों में बच्चों के मुंडन किसी विशेष स्थान पर जाकर संपन्न कराने का मूल्य स्थापित है । इस प्रकार के व्यक्ति पुरानी मान्यता मुंडन को स्वीकार करते हैं तथा आधुनिक दृष्टि से उस विशेष निर्धारित स्थान पर न जाकर अपने परिवार या आसपास ही मुंडन करा देते हैं । इस प्रकार विवाह, यज्ञोपवीत संस्कार, श्राद्धकर्म,अनुष्ठान आदि के प्रति विद्रोह की चेतना तो प्रतिलक्षित होती है परंतु ये परंपराएँ अपने मूल में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं । जहाँ कहीं मानसिकता के साथ इनका पूर्णतया सामंजस्य नहीं बैठता इनकी परंपरा शिथिल रूप में चलती जाती है, या फिर कभी उपेक्षा की वस्तु बन जाती है ।

जहाँ तक उपर्युक्त तथ्यों को प्रकाश में परम्परागत मूल्यों की वस्तु स्थिति तथा संक्रमण आदि के विषय में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक ओर समाज में व्याप्त आधुनिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप नयी धारणाएँ नये मूल्य बन रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर परंपरागत मूल्य भी अपना अस्तित्व धारण किये हुए हैं । इस प्रकार मूल्य नवीन या प्राचीन न रह कर विकृत अवस्था में आ जाते हैं । उपर्युक्त स्थिति एक प्रकार से मूल्य संकट की स्थिति है, जिसमें एक ओर परंपरागत मान्यता प्राप्त समाज रचना से उत्पन्न हुए मूल्य विद्यमान हैं तो दूसरी ओर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की स्थापना की आकांक्षा

से युक्त मूल्य रहते हैं । इस स्थिति में व्यक्ति को अपनी सामाजिक आवश्यकताओं तथा अभिप्रायों के मध्य एक विशेष अलगाव का बोध होने लगता है । फलत: व्यक्ति के वरण की संभावनाएँ तथा निर्णय की इच्छाएँ इतनी प्रबल हो जाती हैं कि वह कठिनता से परिस्थितियों का सामना कर पाता है । परिवर्तन का यह प्रभाव समूह के भिन्न-भिन्न वर्गों पर विविध प्रकार से होता है । अभिजात्य वर्ग परिवर्तित स्थितियों को चुनौती के रूप में स्वीकार करता है और सहसा मूल्य संकट के प्रति जागरूक हो जाता है, जबकि सर्व-सामान्य व्यक्ति दिशा-हीन होकर भटकता रहता है ।

उक्त स्थिति को दूसरे शब्दों में कहा जाय तो आज सभ्यता(Ci--vilization) परिवर्तन की ओर तीव्र गति से बढ़ रही है जबकि संस्कृति (Culture) या विचार दृष्टि(Thinking) उतनी तीव्र गति से अग्रसर नहीं हो रही है । इस प्रकार विचार तथा संस्कृति इस दौड़ में सभ्यता से पीछे रह जाते हैं अर्थात् समाज में भौतिक परिवर्तन शीघ्र पनप रहे हैं जबकि भाव, विचार तथा आशा-आकांक्षाओं से अनुप्राणित संस्कृति धीरे-धीरे परिवर्तित हो रही है । सभ्यता और संस्कृति से ही सामाजिक जीवन की धारा निर्बाध रूप से आगे बढ़ती है । विपरीत स्थिति में दोनों का विरोध ही समाज में असंतोष का कारण बनता है, जिससे प्राचीन मूल्यों का विघटन तथा नये मूल्यों की स्थापना की स्थिति उत्पन्न होती है । नये मूल्यों की पूर्ण स्वीकृति की स्थिति में सभ्यता एवं संस्कृति का विरोध मिटता हुआ सा लगता है तथा सामाजिक जीवन शान्त व सौम्य रहता है ।[33]

इस प्रकार समाज, संस्कृति और व्यक्तित्व का यह विघटन और विश्रृंखलन ही क्षण मात्र को उत्कंठापूर्वक जी लेने की आकांक्षा को प्रबल करता है जिसके कारण कभी- कभी ऐसा अनिर्णित विवाद उत्पन्न हो जाता है कि सत्य इन्द्रिय भोग है या इन्द्रियातीत। साथ ही साथ जब व्यक्ति को अनुभूति होती है कि सामाजिक विघटन और आदर्शों के विखंडन के कारण सम्बंधों के परिवेश संकुचित होते जा रहे हैं तब वह अपने ही सम्बंध में संशयशील हो जाता है और उस आदर्श भूमि का अन्वेषण करने का प्रयत्न करता है जिससे उसका तादात्म्य होकर उसे आत्म-शान्ति मिल सके।[34] इस प्रकार मूल्यों का संक्रमण ही नये मूल्यों की स्थापना व विकास में सहायक होता है।

आधुनिक मूल्य-विकास के विविध पक्ष :

पूर्ववर्ती विवेचन से स्पष्ट है कि आर्थिक साधनों के बढ़ने से सामाजिक परिवेश में परिवर्तन आता है। सामाजिक परिवेश के परिवर्तन से व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन आता है परिणामत: मूल्यों में परिवर्तन आता है। प्रत्येक मूल्य युग सन्दर्भ में अंकुरित तथा पल्लवित होता है। साठोत्तर काल में इसी प्रवृत्ति ने जीवन मूल्यों व नैतिकता को विशेष कर प्रभावित किया है। अत: मूल्यों के विकास की प्रवृत्तियाँ या विविध पक्ष बन गये हैं जिन पर यहाँ विचार किया जा रहा है।

१- परंपरागत मान्यताओं का खंडन :

यह पहले भी संकेत दिया जा चुका है कि प्राचीन व नवीन मूल्यों

की टकराहट व टूटन के कारण आज नैतिक मान्यताएँ टूट रही हैं। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी मान्यताएँ हैं जो अपने रूप में कितनी भी उपयोगी हों आज के सामाजिक परिवेश में निरर्थक सी कही जा सकती हैं। मान्यताओं, आस्थाओं और लोक-विश्वासों की परम्परानुगामिता सामान्यतया आज की बौद्धिकता को सन्तुष्ट नहीं कर पाती तथा दूसरी ओर समय-समय पर विकृतियों के अत्यधिक सन्निवेश तथा अपरिवर्तन की जड़ता एक प्रबुद्ध व्यक्ति को उनके प्रति विद्रोही बनाती जा रही है। आज के व्यक्ति की स्वतंत्र चेतना या वैयक्तिकता भी एक सीमा तक इसके लिए उत्तरदायी है। इन सभी युगीन परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप प्राय: अधिकांश मान्यताएँ तथा आस्थाएँ आज के प्रबुद्ध व्यक्ति को निरर्थक और त्याज्य जान पड़ती हैं। फलत: या तो वह उनके प्रति उपेक्षा का भाव रखता है अथवा द्वन्द्वमय परिस्थितियों का सामना करने पर वह उनके प्रति विद्रोह व्यक्त करता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मान्यताओं का इस प्रकार मूलोच्छेदन नये मूल्यों की प्रतिष्ठा का अवसर प्रदान करता है, किन्तु जो मान्यताएँ एक सीमा तक अपना प्रभाव जमाये हुए हैं या किसी रूप में उपयुक्तता का अंश भी रखती हैं वे नयी चेतना के आलोक में नयी व्याख्या या नया रूपाकार पाने की दिशा में भी हैं।

२-व्यक्तिगत जीवन व स्वतंत्र यौन सम्बंध :

उपरिनिर्दिष्ट वैयक्तिक चेतना से सम्पृक्त व्यक्ति आज आधुनिकता की स्पर्द्धा में भाग लेता हुआ स्वतंत्र यौन-सम्बंधों का समर्थक बनकर पारिवारिक नैतिक बन्धनों को अनायास ही तोड़ रहा है।[३५] द्वितीय अध्याय के अंतर्गत

स्पष्ट किया जा चुका है कि मनोवैज्ञानिक प्रक फ्रायड, एडलर, युंग उन्मुक्त यौन वृत्ति को एक आवश्यकता के रूप में स्वीकार करते हैं । अत: प्राय: यह देखा जाता है कि स्त्री-पुरुष सेक्स को शारीरिक आवश्यकता मानकर स्वतन्त्र सम्बन्ध स्थापित करते हैं। फलत: दाम्पत्य-जीवन के नैतिक बन्धन तथा तद्गत मूल्य टूट रहे हैं । आज शारीरिक सम्बंध पति-पत्नी के मध्य तक सीमित न रहकर विवाहोत्तर तथा विवाहेतर भी बनते जा रहे हैं । नारी का अहं व आर्थिक स्वतंत्रता भी आज शारीरिक पवित्रता के मूल्य को विस्मृत कर स्वतंत्र यौन सम्बंध में स्थापित होती जा रही है, तथा नारी दैहिक सुख को ही जीवन का मूल्य मान रही है । इसके विकास में `गर्भ निरोधक` तथा `गर्भपात` का भी विशेष सहयोग उसे मिल रहा है । सहशिक्षा व अधिक आयु में विवाह होना भी पाप-पुण्य तथा नैतिकता की अनुभूति छोड़ नये दृष्टिकोण व उन्मुक्त यौन सम्बंध में सहायक होता है ।

उपर्युक्त परिवर्तनों के कारण पति-पत्नी में निजी अस्तित्व के स्थापन तथा समानाधिकार की भावना प्राय: दृष्टिगोचर होती है और विवाह एक धार्मिक-सामाजिक संस्कार न होकर मात्र पारस्परिक समझौते का रूप लेता जा रहा है । दाम्पत्य जीवन में विवाद की स्थिति सम्बंध विच्छेद का कारण बन रही है । अत: स्पष्ट है स्वतंत्र यौन-सम्बंध तथा वैयक्तिक चेतना दोनों के सम्मिलित प्रभाव के कारण परिवारों में विघटन की स्थितियाँ निर्मित होती जा रही हैं । जीवन मूल्यों के दृष्टिकोण से विचार करें तो यह एक प्रकार से मूल्यों के टूटने की स्थिति है । यदि यह नयी परिस्थिति अधिक विकसित हो जाती है तो इनके व्यक्तिगत मूल्य भी भविष्य में टूट सकते हैं । समाज के प्रति नैतिक दायित्व को भी इससे बहुत अधिक आघात पहुँच सकता है ।

एतद्विषयक वस्तु स्थिति का यदि आकलन किया जाय तो आज यह स्थिति इतनी व्यापक नहीं कही जा सकती तथा दूसरे अभी स्वतंत्र यौन-सम्बंधों को खुले तौर पर सामाजिक मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी है ।

३-परंपरा के प्रति विद्रोह :

परंपरा के प्रति विद्रोह की मानसिक आधारभूमि का संकेत मान्यताओं के खंडन के सन्दर्भ में भी किया जा चुका है । तृतीय अध्याय के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि संयुक्त परिवार की परंपरा में मूल्य, आचार-व्यवहार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किये जाते हैं । आज एतद्विषयक जीवन के प्राय: दो रूप मिलते हैं - एक ओर ऐसा जीवन जिसमें परिवार तथा परंपरागत शिक्षालय होते हैं जहाँ परंपरागत मूल्य सिखाये जाते हैं । दूसरी ओर ऐसी आधुनिक भूमि है जहाँ नयी पीढ़ी को परम्परा विरोधी तथा अवमूल्यनवादी प्रकृति के कारण प्राचीन बातें कुरीतियाँ तथा गलत लगती हैं और वे अपना मार्ग स्वयं बनाने के ~~र~~ प्रयास में अपना गन्तव्य ही निर्धारित नहीं कर पातीं, फलत: उन्हें दोनों ओर के कटु अनुभवों का सामना करना पड़ता है । उनकी यह मान्यता बनती जाती है कि जब व्यक्ति के मध्य अलगाव की दीवार खड़ी है तब संयुक्त परिवार, सद्भाव, पारिवारिक सहयोग या प्रेम का महत्व या मूल्य ही क्या रह गया है ? इस प्रकार नयी पीढ़ी परंपरा के प्रति पूर्ण रूप से विद्रोह करती है कहीं वह असफल होती है और द्वन्द्वात्मक स्थिति में तनावग्रस्त हो जाती है तो कहीं समाज की अनेक ऐसी परंपराओं को जो आज कुरीतियाँ मानी जाती हैं विद्रोह कर उन्हें समूल नष्ट करने का प्रयास करती है। परंपरागत अनमेल विवाह, क बाल-विवाह, बहु-विवाह ,

दहेज प्रथा, सती प्रथा का समाप्त होना इसी चेतना का परिणाम है। फलत: विधवा विवाह, प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, जैसे नर्न नये मूल्य विकसित हो रहे हैं।

४-पारिवारिक सम्बंध और नये जीवन आयाम :

यह सर्वविदित है कि परिवार ऐसी सामाजिक इकाई है जिसमें प्रेम, दया, सहानुभूति, स सद्भाव, त्याग व सहयोग की भावना सर्वोपरि रहती है। तृतीय अध्याय में लक्ष्य किया जा चुका है कि व्यक्ति किसी न किसी रूप में परिवार व समाज से सम्बंधित रहता है। परिवार के दायित्वों के निर्वाह से ही सामाजिक जीवन मूल्यों की रक्षा होती है। उपर्युक्त समस्त पारिवारिक मूल्य आज के बदलते परिवेश में लुप्त होते जा रहे हैं। जैसा कि पूर्ववर्ती विवेचन में भी लक्ष्य किया जा चुका है कि किसी सीमा तक शिक्षा, आधुनिक दृष्टिकोण, वैयक्तिकता, नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा बढ़ती आर्थिक आवश्यकताएँ तथा परिस्थितियों को इसके कारण रूप में माना जा सकता है।

पूर्ववर्ती अध्याय में लक्ष्य किया गया है कि बदलती अर्थ-व्यवस्था ने मानव सम्बंधों को ममहित किया है तथा स अर्थ-व्यवस्था का संचालन सूत्र किसी सीमा तक नारी ने अपने हाथ में भी पकड़ा है। अत: स्त्री-पुरुष दोनों ही आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो गये हैं। फलत: स्त्री-पुरुषों के सम्बंधों में अन्तर आने से पारिवारिक जीवन के नये आयाम स्थापित होने लगे हैं। दूसरी

UNIVERSITY LIBRARY
THE M. S. UNIVERSITY OF BARODA

और नैतिक बन्धन भी उनके लिए बोझ मात्र बन कर शिथिल हो रहे हैं जिससे स्त्री- पुरुष के विचार व चिन्तन की स्थिति बदल रही है। यथार्थवादी दृष्टिकोण मानव मूल्यों को मर्यादा व आदर्श के स्थान पर कुंठा, असन्तोष व स्वच्छंद प्रवृति में परिवर्तित कर रहा है। इस प्रकार परिवारों में भावात्मक अन्तर आ रहा है। एक ओर शिक्षा के प्रसार के साथ -साथ औद्योगिकरण तथा नगरीकरण होता जा रहा है, तो दूसरी ओर व्यक्ति का अहं व अपने अस्तित्व के प्रति सजगकता उभर रही है। वैयक्तिकता व पाश्चात्य सभ्यता ने संयुक्त परिवारों को तोड़ने में विशेष सहायता की है। अत: बच्चों का आकर्षण, उनके प्रति उपेक्षा, वात्सल्य भावना, मातृ-पितृ भावना भी क्षीण होती जा रही है। कार्य व्यस्तता व उक्त अर्थ व्यवस्था के कारण दाम्पत्य जीवन के मधुर वातावरण में तनाव व कुंठाएँ आती जा रही हैं। फलत: पारिवारिक सम्बंधों में परिवर्तन तथा जीवन मूल्यों में नये आयाम सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

५- नये दृष्टिकोण का प्रभाव :

पूर्ववर्ती विवेचन में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि आलोच्य काल में अतिशय बौद्धिकता के दर्शन होते हैं जिसमें पुराने लोकाचार, आचार-व्यवहार के स्थान पर नये दृष्टिकोण अंकुरित हो रहे हैं। यथा-सत्कार, सम्मान, अतिथि प्रेम जैसे शिष्टाचार भी औपचारिकता मात्र बनते जा रहे हैं। बड़ों का अभिवादनार्थ प्रणाम व नमस्कार का महत्व आज उतना नहीं रहा है। इसी प्रकार आशीर्वाद व न्यौछावर, शुभकामनाओं में व्यक्तियों का विश्वास

नहीं रह गया है । सन् १९६० के बाद यह स्थिति अत्यन्त औपचारिक होती जा रही है जिसका स्पष्ट प्रभाव परिवारों के मूल्यों पर पड़ रहा है । बौद्धिकता से आक्रान्त मानव के व्यवहारों में यान्त्रिकता आती जा रही है । फलस्वरूप वह आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है ।

निष्कर्ष :

पूर्ववर्ती विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि जब व्यक्ति की अन्तरंगता तथा निरपेक्ष जीवन दृष्टि आपस में मिल जाती है तब एक द्वन्द्व का प्रारंभ होता है और मूल्य विघटित होते हैं तथा नयी अन्तरंगता प्राप्त करने वाले मूल्य विकसित होते हैं । जैसे-जैसे आधुनिकता में विकास व संक्रमण हुआ ~~वैसे-वैसे-आधुनिकता~~ वैसे-वैसे सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्विरोधों में अधिक संघर्ष हुआ । फलतः सामाजिक, पारिवारिक सम्बंधों के नये आयाम व जीवन के नये मूल्य स्थापित होने लगे । औद्योगीकरण, शिक्षा, पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण मूल्यों का संक्रमण गाँवों की अपेक्षा नगरों में अधिक व तीव्र गति से हुआ तथा पारम्परिक सामाजिक संरचना नष्ट होकर नवीन आयामों व मूल्यों में परिवर्तित होने लगी । यह अवश्य है कि गाँवों का जीवन भी इस प्रभाव से वंचित नहीं कहा जा सकता । स्थितियों का यथार्थ दबाव एक ओर नये मूल्यों को जन्म दे रहा है तो दूसरी ओर व्यक्ति एकाकीपन को अपनाता जा रहा है । परंपरागत पूज्य तथा श्रद्धा जैसे उच्च भाव रूपी शिखर भी आज टूट कर ध्वस्त हो रहे हैं । सद्, शुभ्र तथा उच्च भावों के मध्य अनैतिकता से भरा मूल्य संक्रमण रूपी आँचल लहराने लगा है जिसमें नयी पीढ़ी की उत्तरदायित्व- ~~अनैतिकता-से-भरा मूल्य-संक्रमण-रूपी-आंचल-लहराने-लगा-है-जिसमें-नयी-पी~~ -विहीनता की उपहासास्पद स्थिति ही आज का सत्य प्रतीत हो रही है ।

यही स्थिति व्यक्तियों में संघर्षमय जीवन का प्रारंभ कर उसे एक विचित्र रिक्तता का बोध कराती है । अत: इसी के अनुरूप सामाजिक स्थिति भी अपना नया रूप लेती है । जहाँ कहीं-कहीं पुराने मूल्य तो टूट जाते हैं परंतु नये मूल्यों का निर्माण नहीं हो पाता तथा मूल्य संकट की स्थिति रहती है जिसमें परंपरागत मूल्य विकृत अवस्था में अधिक विद्यमान दृष्टिगोचर होते हैं । मूल्य संघर्ष का यह सामाजिक आक्रोश सर्वत्र विद्यमान दृष्टिगोचर होता है । जिसमें एक ओर समाज प्रगति करना चाहता है परन्तु दूसरी ओर वहीं रहना भी चाहता है जहाँ रह रहा है । ऐसी स्थिति को दूसरे शब्दों में मूल्यहीनता की संज्ञा दी जा सकती है । साथ ही नवीन ग्रन्थों में समता, मानवतावाद, व्यक्ति स्वातंत्र्य, आस्तिकता, आध्यात्मिकता आदि प्रधान तत्व उभर कर नये रूपों में आ रहे हैं ।

प्रस्तुत अध्याय में जीवन मूल्यों का सैद्धांतिक तथा ऐतिहासिक पक्ष का अनुशीलन अपने प्रतिपाद्य विषय की सीमा में रहकर किया गया है । इसका प्रतिफलन साठोत्तर कहानी साहित्य में पर्याप्त मात्रा में देखा जा सकता है जो कि परवर्ती परिच्छेदों का विषय है । साठोत्तर कहानी में पारिवारिक जीवन मूल्यों की स्थिति का विश्लेषण करने के लिए आवश्यक है कि हम उक्त आलोच्य सामग्री के माध्यम से सर्वप्रथम पारिवारिक जीवन के विविध पक्षों का अनुशीलन करें, जिसे परवर्ती अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है ।

सन्दर्भ- संकेत :

१- R.K.Mukerjee-'The social structure of Values'-Page-21

२- विमलकुमार- मूल्य परिवर्तन, मानविकी के सन्दर्भ में आलोचना पत्रिका- अक्टूबर- दिसम्बर-१९६७ पृ० ६४

३- Any demonstrated or demonstrable item of reality'ÿ Henry pratti Faire child and others-Dictionary of Sociology and related sciences-Page-113

४- M.Hirriyana-'Philosophy of Values'- 'The cultural Heritage of India-Page-645

५-कृष्णनाथ-`मूल्य की परिभाषा`- कल्पना पत्रिका, अप्रैल-६४ पृ० ३७

६- A Value is the actual experiencing of what is linked, an ideal is the definition or concept of what is or ought to be experiened as a value'-V.Ferm-Peter cower- An Encyclopaedia of Religion- Page-808.

७- Brightman-Persons and values-Page-53

८- Henry Prati Faire Child and others-Dictionary of Sociology and related sciences -Page-331

९- R.K.Mukerjee- 'The social structure of Values'-Page-9

१०- R.K.Mukerjee- 'The Dimerisions of Values'- Page-97

११- Philip Laurence Harriman,-Dictionary of Psychology- Page-240

१२- R.K.Mukerjee-'The Dimensions of values'-Page-98

१३- डॉ० हेमेन्द्र पानेरी- स्वातन्त्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में मूल्य संक्रमण,पृ०२

१४- आचार्य उमेश शास्त्री- प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन- पृ० १८८

१५- Lasky and Marshall-Value and Existence'-Page-30

१६- डॉ० रमेशचन्द्र लावनिया- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य-पृ० ६

१७- हुकुमचन्द्र- आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य, पृ० ६१

१८- डॉ० प्रेमप्रकाश गौतम- `चिन्तन`- पृ० ५६

१९- डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास- पृ० ८०

२०- उपरिवत्- पृ० ७४

२१- उपरिवत्- पृ० १६८

२२- रमेश कुन्तल मेघ- `मूल्य और मूल्यांकन` बिन्दु पत्रिका- अक्टूबर-१९६७ सं० नेम नारायण जोशी, अंक-चार- मूल्य विश्लेषण अंक, पृ० ११

२३- R.K.Mukerjee-1 The social structure of Values-Page-9

२४- डॉ० मदनगोपाल गुप्त- मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति- पृ० २२३

२५- उपरिवत्- पृ० ३३

२६- सम्पादकीय-दायित्व और स्वातन्त्र्य : अविच्छिन्न मूल्य, आलोचना पत्रिका, जनवरी १९५६-पृ० २

२७- डॉ० रमेशचन्द्र लावनिया- हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य-पृ० १६

२८- उपरिवत्- पृ० १६

२९- डॉ० मदनगोपाल गुप्त- मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति- पृ० ५४

३०- डॉ० देवराज- संस्कृति का दार्शनिक विवेचन- पृ० १६८

३१- योगेश अटल- वैज्ञानिक की भूमिका और मूल्य का प्रश्न-बिन्दु पत्रिका- सं० नेमनारायण जोशी, अक्टूबर-दिसम्बर १९६७,मूल्य विश्लेषण अंक- पृ० १९

३२- एन.जी.एस.कीनी- 'मूल्य सन्दर्भ और सामाजिक परिवर्तन - बिन्दु पत्रिका, मूल्य विश्लेषण अंक १९६७-पृ० ३५

३३- होतीलाल भारद्वाज- मूल्य परिवर्तन तथा सामाजिक आक्रोश-बिन्दु पत्रिका,मूल्य विश्लेषण अंक- १९६७ पृ० ६५

३४- एन.जी.एस.कीनी- 'मूल्य सन्दर्भ और सामाजिक परिवर्तन- बिन्दु पत्रिका- मूल्य विश्लेषण अंक-१९६७- पृ० ३७

३५- डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास- पृ० ७८

--